मथुरा संग्रहालय में स्थित स्तूप के द्वार पर वि
परमेष्ठि मंत्र
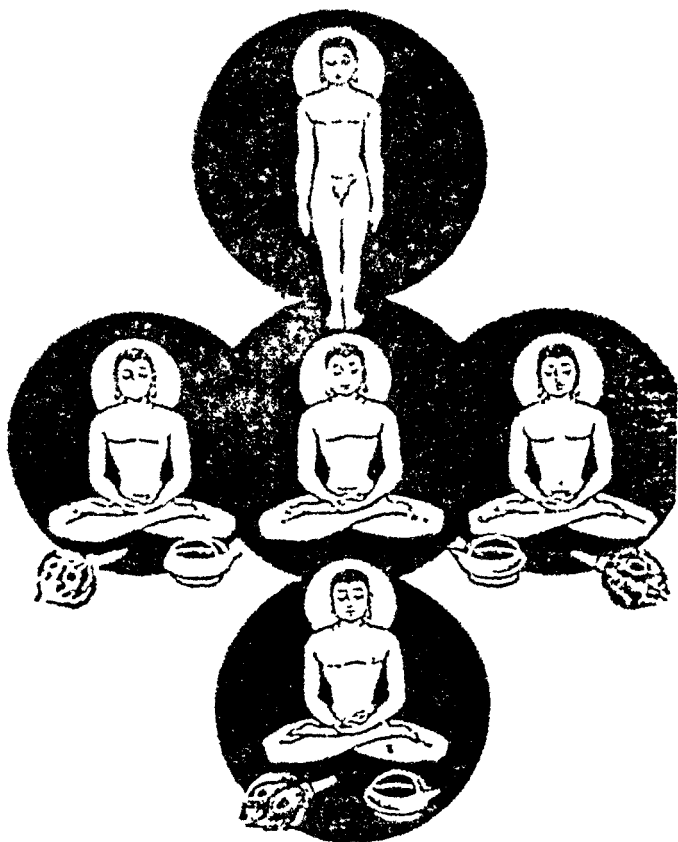
[पचपरमेष्ठी]

[illegible]
[illegible]
मुक्त होकर [illegible]
सकता है।

जैन धर्म में सच्चे आप्त देव का लक्षण (ईश्वर)

आप्तेनोच्छिन्नदोषेण सर्वज्ञे नागमेशिना ।
भवितव्यं नियोगेन नान्यथा ह्याप्तता भवेत ॥
(रत्नकरण्ड श्रावकाचार)

अर्थ—नियम से राग द्वेषादि अष्टादश दोष रहित वीत-राग, भूत भविष्यत् वर्तमान का ज्ञाता सर्वज्ञ और परम हितोप-देशक बनाकर आगम का ईश ही आप्त अर्थात् सत्यार्थ देव होता है, निश्चय से और किसी प्रकार आप्तपना हो नहीं सकता।

भावार्थ—सच्चा देव वही है जो वीतराग, सर्वज्ञ, और हितोपदेशक हो। इन तीनों गुणों के बिना आप्तपना हो नहीं सकता। इनकी तो मुख्यता है और अनेक गुणाकर सहित होते हैं। जो देव आप ही दोष संयुक्त है वह दूसरे जीवों को कैसे निराकुल सुखी और निर्दोष बना सकता है। जो स्वय क्षुधा त्रिषा, काम, क्रोधादि सहित है उसमे ईश्वरपणा कहा से हो सकता है। जो भय सहित है शास्त्रादिक को ग्रहण करता है जिसके द्वेष, चिन्ता, दुख आदिक निरन्तर बने रहते है जो कामी-रागी होने के कारण निरन्तर पराधीन रहता है, भला उसके

निराकुलता तथा स्वाधीनता कैसे सभव हो सकती है जहा निराकुलता तथा स्वाधीनता नही वहां सत्यार्थ वक्तापना नही। जिसके जन्म-मरण रोग लगा है, जिसके ससार भ्रमण का अभाव नही हुआ है, जो जरा आदि से ग्रसित हो सकता है उसके सुख-शांति कहा ? इसलिए जो निर्दोष होता है सत्यार्थ रूप मे उसी का नाम आप्त है, देव है। जो रागीद्वेषी होता है वह अपने पद के रागद्वेप को पुष्ट करने का ही उपदेश दिया करता है। इसलिये यथार्थ वक्तापणा तो वीतराग के ही सभव हो सकता है। जो सर्वज्ञ नही, उसके यथार्थ वक्तापणा नही। क्योंकि इन्द्रिय जनित ज्ञान तो सर्व त्रिकालवर्ती समस्त द्रव्यो की अनन्तानन्त परिणति को युगपत एकसाथ पदार्थों की देखनेजानने की सामर्थ नही। इन्द्रियजनित ज्ञान क्रमवर्ती स्थूल पुद्गल की (जडपदार्थ) अनेक समय में भई, जो एक स्थूल पर्याय को ही जानने वाला है। फिर भला अल्प ज्ञानी का उपदेश सत्यार्थ कैसे हो सकता है, सर्वज्ञ का ही उपदेश सत्यार्थ होता है। इसलिये सर्वज्ञ के ही आप्तपणा सभव है जो बिना भेद-भाव के यानी अतीन्द्रिय केवल ज्ञान के द्वारा जगत के प्राणी मात्र के हित और कल्याण के लिये यथार्थ उपदेश का करने वाला है। बिना किसी प्रकार की इच्छा को रखते हुए वही हितोपदेशी है। इसलिये जिस किसी देव मे भी वीतरागता, सर्वज्ञता तथा हितोपदेशपणा, यह तीन लक्षण पाये जावे वही सच्चा आप्त है—कहा भी है "जिस ने रागद्वेप कामादिक जीते, सब जग जान लिया। सब जीवो को मोक्ष मार्ग का निस्पृह हो उपदेश दिया। बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर, ब्रह्मा, या उसको स्वाधीन कहो। भक्ति भाव से प्रेरित हो यह चित उसी में लीन रहो।"

अब सच्चे गुरु का लक्षण कहते हैं

पानी पीजे छान के और गुरु [illegible] [illegible] [illegible]
मे कहावत भी है —

विपया शावशात्तीतो, निरारम्भो परिग्रह. ।
ज्ञानध्यानतपोरक्त , तपस्वी सप्रशस्यते ॥

अर्थ - जिन्होंने पांचों इंद्रियों और उनके [illegible]
को और छठे मन को और [illegible] प्रकार के [illegible] [illegible]
प्रकार के अन्तरंग-बहिरंग परिग्रहों को [illegible] छोड़ दिया है
और निरन्तर ज्ञानध्यान और तप ही मे अपनी आत्मा को
लगाते है, कभी भी विकथा नही करते, वोही निर्ग्रन्थ कहिये,
नग्न वीतराग कहिये रागद्वेषादि करके रहित साधु (गुरु)
प्रशंसा करने योग्य है श्री गुरु उपदेश देते है 'यह इंद्रिय सबन्धी
सुख विनाशीक है'—

सपरंबाधा सहियं विच्छिण्णवंध कारण विषयम् ।
जंइदियेहिलद्ध तं सोखं दुक्खेमेव नहा ॥

अर्थ - इन्द्रिय सम्बन्धी सुख पराधीन है, बाधा सहित है,
विनाशीक है, बध का कारण है और विषम है। इस प्रकार इसे
सुख नही बल्कि दु ख ही कहना, समझना चाहिये। और भी
कहते है —

प्रति क्षणमयं जनो नियत मुग्र दुःखा तुरः ।
क्षुधादि भिर मिश्र यंस्त दुप शान्त येऽन्नादिकम् ।
तदेव मनुत सुखम् भ्रमवशाद्य देवा सुखैः ।
समुल्लसतिक-ज्भा कारु जिय था शिरिवस्वेदनम् ।

अर्थ - जिस प्रकार खाज का रोगी मनुष्य अग्नि से खाज को सेकने में सुख मानता है किन्तु अग्नि का सेकना दुःख ही का कारण है। उसी प्रकार यह संसारी जीव जब क्षुधा तृषा और पांचों इन्द्रियों से पीड़ित होता है तो उसी शान्ति के लिए यथा योग्य सामग्री का आश्रय लेता है। उस समय कुछ शान्ति मिलती है, पश्चात फिर दुःख स्वरूप है। इस लिए उनका भ्रम है "यत्र भोगास्तत्र रोगाः" यह एक सामान्य नियम है जहां भोग है वहां रोग है और भी कहते हैं।

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता,
स्तपोनतप्तं वयमेव तप्ताः ।
कालो न यातो वयमेव याता,
स्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः ॥

अर्थ - विषयों को हम न भोग पाये परन्तु विषयों ने हमारा बीचमें ही भुगतान कर दिया। हम तप तो न तप पाये मगर तप ही ने हमें तपा डाला। काल व्यतीत न हुआ मगर हमारी उमर खतम हो गई। तृष्णा पुरानी न हुई पर हम (बुड्ढे) हो गये। मनुजी भी मनुस्मृति के दूसरे अध्याय में कहते हैं।

इंद्रियाणां विचरतां विषयेष्व पहारिषु ।
संयमे यत्नमातिष्ठेद विद्वान यन्तेव वाजिनाम् ॥

अर्थ —जैसे सारथी रथ के घोड़ों को अपने स्वाधीन रखता है, वैसे ही विद्वान पुरुष को अप

मैं शब्द का अर्थ है निरन्तर, आत्मा में ऐसा विचार रखना।

छन्द

मैं सुखी दुखी मैं रंक राव, मेरो धन गृह गोधन प्रभाव।
मेरे सुत तिय मैं सबल दीन, बेरूप सुभग मूरख प्रवीन।
तन उपजत अपनी उपज जान, तन नशत आपको नाशमान।
रागादि प्रकट ये दुःख दैन, तिनही को सेवत गिनत चैन।
शुभ अशुभ बंध के फल मझार, रति अरति करै निज पद बिसार।
आतम हित हेत विराग ज्ञान, ते लखै आपको कष्ट दान।
रोकी न चाह निज शक्ति खोय, शिव रूप निराकुलता न जोय।
याही प्रतीत जुत कछुक ज्ञान, सो सुखदायक अज्ञान जान।

ऐसी भावना अदृश हो जाय और सदा विद्यमान एक आत्मा मात्र ही प्रकाशमान हो जाय। जिस दशा में 'अहं' विचार का लेश भी नहीं उसे स्वस्वरूप स्थिति कहते हैं वास्तव में वही मौन कहलाता है। मौन की इस दशा का दूसरा नाम ज्ञान दृष्टि है उसका अर्थ है आत्म स्वरूप में मन का लय होना जो शुक्ल कहलाता है यह आत्म स्वरूप ही है। सुख एव आत्म स्वरूप अलग नहीं है। आत्म स्वरूप ही एक मात्र [illegible] ही निर्जरा का कारण है। वहाँ उस समय आत्मा अबंध है। सांसारिक चीजों में से किसी एक में हम जो सुख [illegible] है वह सच्चा सुख नहीं है। अपने अविवेक पूर्ण चिन्तन [illegible] कारण ही हम उन चीजों में सुख मान बैठे हैं। मन [illegible] है [illegible] वह दुःख का अनुभव करता है। [illegible] और अशान्त मन इस प्रकार [illegible] सुख नहीं है। [illegible] ही है [illegible] ही शुभ और अशुभ दो प्रकार

होती है। शुभ वासनायुक्त मन शुभ और अशुभ वासनायुक्त मन अशुभ कहलाता है। दूसरे लोग चाहे कितने ही बुरे मालूम होते हों उनका तिरस्कार मत करो। मन को सासारिक विषयों मे अधिक मत बहाओ। यदि अहकार जाग गया तो उसके साथ ही सब कुछ जाग उठता है। यदि अहकार (मै) का नाश हो जाय तो सब कुछ विलीन हो जाय। हमारा वर्ताव अन्य से जितना अधिकाधिक विनम्र होगा, उतना ही अधिकाधिक हमारा श्रेय होगा। मन वश मे आ जाय तो फिर हम चाहे कहीं भी रह सकते है। सारे व्रत, सयमशील उपासनाये एक मन को ही वश मे करने के लिये साधन है।

मन एव मनुष्याणां कारणं वन्ध मोक्षयोः।

वस मन यही जगत है। मन नही तो जगत नही। ससार को किसने जीता? किसने मन को जीता? मन विकारी है। इसका कार्य संकल्प विकल्प करना है। चेतन अचेतन परिग्रह मे ममत्व भाव रखना कि ये मेरे है, मैं इनका स्वामी हूं उसे सकल्प कहते हैं। तथा मैं सुखी दु खी, ऐसा हर्ष विषाद रूप परिणाम रखना विकल्प है। यह जीव जिस पदार्थ को ग्रहण करता है स्वय भी तदाकार वन जाता है। यह राग के साथ ही चलता है। सारे राग अनर्थो की उत्पत्ति राग से ही होती है। राग (प्रीति) न हो तो यह मन प्रपचो की तरफ न जाय। किसी भी विषय मे गुण और सौंदर्य देखकर मन उसमे राग करता है,

इसी से मन की उस विषय मे प्रवृत्ति होती है। परन्तु जिस विषय मे इसे दुःख और दोष दीखता है, उससे इसका भी द्वेष हो जाता है। फिर यह मन उसमे प्रवृत्ति नही करता। यदि भूल से उसमें प्रवृत्ति हो भी जाती है, तो उसमें अवगुण देख कर द्वेष से तत्काल लौट आता है। वास्तव मे द्वेष वाले विषय मे इसकी प्रवृत्ति राग से होती है, साधारणतया यही मन का स्वभाव और स्वरूप है।

मन की चेतना को बढाने वाले कारणो को छुटाना चाहिये।

(१) व्याधि—शारीरिक रोग नही लगने देना।
(२) स्त्यान—साधना से लाभ देख कर भी उस मार्ग का अवलम्बन न कर सकना।
(३) सशय—मन का सदेह न मिटना।
(४) प्रमाद—लापरवाही आलस्य न करना।
(५) आलस्य— सुस्त मन रहना।
(६) अविरत—सयमरहित-प्रवृत्ति। किसी प्रकार काय नियम न करना।
(७) भ्रांतिदर्शन—अपने मिथ्या ज्ञान को कुशल समझना।
(८) अलब्धभूमिकत्व—किसी लक्ष्य तक पहुच न सकना।
(९) अनवस्थित चितत्व—किसी भी केन्द्र पर चित्त का टिकना और उसका ढल जाना।
(१०) दुःख—मानसिक क्लेश का होना।
(११) दौर्मनस्य—किसी इच्छा के पूर्ण न होने पर चित्त में क्षोभ का रहना।

(१३) अङ्गमेजयत्व—अङ्ग-उपाङ्गों का हिलना डुलना ग्रास-नार्थ न होना।

(१४) श्वास प्रश्वास—प्राण की गति का अनवस्थित रूप से चलना।

(१५) प्रतिपक्ष भावना—काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, अज्ञान ईर्षा, द्वेष, राग ग्रादि की प्रवृत्तियां चचल मन मे उसी प्रकार लगातार उठती रहती है जिस प्रकार सरोवर मे पत्थर फेकने से लहरो का चक्र उठा करता है। लेकिन घबडाना नही चाहिए। अनुभव करके परेशानी को जीतना चाहिये। मन पर नियन्त्रण विचार को ठहराने से ग्रौर उस पर सतोष परीषह सहन करते हुए एकाग्रमना मे लीन होने से ग्रात्मा को परम शान्ति मिलेगी ग्रौर उसका स्वाद ग्रावेगा। ग्रर्थात् ग्रात्म दर्शन की प्राप्ति होगी। निश्चय से "जैसा खाय ग्रन्न, वैसा होय मन। जैसा पीवे पानी, तैसी बोले बानी॥

भावार्थ—ग्राहार की शुद्धि से मनकी शुद्धि प्राप्त होती है। हमारे शरीर मे पाच कोष माने है—(१) ग्रन्नमय कोष (२) मनोमय कोष (३) प्राणमय कोष (४) विज्ञानमय कोष (५) ग्रानन्दमय कोष—ग्रन्नका प्रभाव मन पर तत्काल पडता है। इस लिए ग्रगर हम चञ्चल ग्रौर उद्धत मन की दौड से बचना चाहते है तो हमे सबसे पहिले ग्रपने भोजन पर नियत्रण ग्रौर सयम तथा मर्यादापूर्वक शुद्ध पदार्थों को, जो कि ग्रभक्ष्य न हो, रसना (जीभ के स्वाद को) निग्रह करते हुए तथा ज्यादा मसालो मे युक्त न हो तथा गरिष्ठ उत्तेजना पैदा करने वाले पदार्थों का सेवन करने से बचने का ग्रभ्यास डालना चाहिए

से तीसरे ३ श्लोको मे कहा गया है पूर्ण वीतराग अवस्था
प्राप्ति पर तो मोक्ष पद को प्राप्त हो जाता है। इसमे सन्देह
ही क्या है। इस वीतराग का बडा अचिन्त्य महात्म है। जो
योगी ध्यान, ज्ञान, कर्म, योग के द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार
करते हैं वह तो धन्य हैं। लेकिन जो मूढ ऐसे अज्ञानी हैं, जो
कुछ नही जानते हैं, वे भी उन ज्ञानियो के पास जाकर उनकी
बात सुनकर उनके अनुसार साधन करने पर वो श्रवण परा-
यण पुरुष भी इस जन्म मृत्यु रूपी ससार सागर से पार हो
जाते है। गीता के अध्याय १३ श्लोक २५ वे मे कहा है –

अन्येत्वेवम जानन्तःश्रुत्वान्येभ्यः उपासते।
तेऽपि चानितरन्त्येव, मृत्युँ श्रुति परायणाः ॥२५॥

पूर्ण ज्ञानियो का अर्थात् मुनियो का ध्यान नग्न अवस्था
मे ही श्रेयस्कर होता है। क्योकि वह ब्रह्म स्वरूप है। जिसका
वर्णन चन्द्रकान्त वेदान्त का मुख्य ग्रन्थ, प्रथम भाग, गुजराती
सूर्यराम देशाई कृत स० २००१ मे छपा) मे पन्ना ४८ मे लिखते है। (इच्छाराम
प्रिंटिंग प्रेस बबई मे पन्ना ४८ मे लिखते है।

चिंता शून्य मदैन्य भैक्ष्य मशनं पानं सरि द्वारिषु।
स्वातन्त्रेण निरंकु शास्थितिर भी निद्राश्मशाने वने ॥
रस्त्रं क्षालन शोषणादि रहितं दिक चास्ति शय्यामही।
संचारोनिगमान्त वीयिषु विदा क्रीडा परे ब्रह्माणि ॥१॥

अर्थ—ज्ञानी पुरुष चिन्ता रहित और उदारता वाली भिक्षा
का भोजन करते है। नदी का जल पान करते है स्वतन्त्रता से

हम क्या सारा समाज दुःखी है। जिसका इष्ट भ्रष्ट है, उसका सब भ्रष्ट है। आज हम मुख्य सुख का उपाय-धर्म साधन को प्रथम भूल कर, उठ सवेरे मे व्यापार कर्म यानी रोजगार मे ही जुट जाते है। फिर बताओ "बोओ पेड बबूल के आम कहा से खाओ" तकदीर का या भगवान ने ऐसा क्या किया जो दोष देते है। लक्ष्मी तो पुण्य की चेरी (दासी) है। और पुन्य बिना धर्म के नही होता। इसलिए सबसे प्रथम सामायिक रोज अवश्य करना चाहिए। इससे चित्त को बड़ी ही शांति और लाभ की प्राप्ति होती है।

प्रार्थना 'आतमराम'

आतमराम जय आतमराम अजर अमर है आतमराम।
पतित पावन आतमराम ॥टे॥
बोलो बन्धुओ बडे प्रेम से आतमराम जय आतमराम।
है यह एक, प्यारा नाम, मन मंदिर में है विश्राम ॥
[illegible] है नाम, इसको कहो [illegible]।
[illegible] सदा सर्वदा आतमराम ॥
[illegible] आतमराम को ॥ ॥१॥

[illegible]
[illegible] कोई [illegible] है [illegible] ॥
[illegible] है आतमराम।
[illegible] है आतमराम [illegible] ॥२॥

[illegible] राम।
[illegible] राम ॥

ध्रुव है नित्य अटल दुनिया मे, शाश्वत रहता आतमराम ।
चिदानन्द चैतन्य चिन्मूरत चिन्मय चिद्रूप है आतमराम बोलो ॥३॥

इसमे सच्चा है आराम, खरच नही होता है दाम ।
भजलो इसको प्रात शाम, जिससे हो जावे कल्यान ॥
अपने ही मे ढूढ निकालो, कर्म करो नित्य प्रति निष्काम ।
ध्यान लगाकर अनुभव करलो, पा जाओगे आतमराम बोलो ॥४॥

महावीर की यह निजवाणी, गौतम-बुद्ध ने इसे बखानी ।
सब धर्मो ने निश्चय जानी, सतो ने इसको पहचानी ॥
अपने पर का भेद जानजा, मिल जावेंगे आतमराम ।
आशा भय स्नेह छोडदे, झनक उठेंगे आतमराम बोलो ॥५॥

मीरा की वह श्याम लगन मे, द्रोपदी की वह चीर हरन मे ।
सीता की वह अग्नि तपन मे, राजुल ने पाया गिरवन मे ॥
मैना सुन्दरि ने पति सेवा मे, पाया अपना आतमराम ।
सेवा के पथ पर आ जाओ, बोल उठेंगे आतमराम बोलो ॥६॥

कुन्द कुन्द की आतममगन मे, योगीन्द्र देव की सत्य लगनमे ।
उमास्वामि की तत्व लगनमे, समतभद्र की श्रुत चितवन मे ॥
स्याद-वाद की गूज गगन मे, सप्तभग की लहर पुलिन मे ॥
सत्श्रद्धा सत्ज्ञान चरन मे, पाया अपना आतमराम बोलो ॥७॥

चादनपुर थल पावापुर जल मे, बना हुआ है वीर का धाम ।
एक दफे निश्चय ला करके, प्रभु दर्शन कर करो प्रणाम ॥
होय मनोरथ पूर्ण तुम्हारे, रिद्ध सिद्ध पावो विश्राम ।
सुमति दोढ़कर जोरके बदे पाजाओगे आतमराम बोलो ॥८॥

त्रैलोक्याधिपते स्वय स्वमनसा ध्यायन्ति योगीश्वरा ।
वन्दे त हरि वशहर्ष हृदय श्रीमान हृदाभ्युद्यताम ।।९।।

।। अथ परमानन्द स्त्रोत्रम् ।।

जब राग-द्वेष से नवृत्ति हुई तो आत्मा मे परमानन्द का ही आह्लाद है, अपने असली स्वरूप को प्राप्त हुआ कर्म कालिमा रहित शुद्ध स्फटिक के समान । कैसा हूँ !

परमानन्द सयुक्त, निर्विकार निरामयम् ।
ध्यान हीना न पश्यन्ति, निजदेहे व्यवस्थितम् ।।१।।

अनन्त सुख सम्पन्न ज्ञानामृत पयोधरम् ।
अनन्तवीर्यं सम्पन्न दर्शनं परमात्मन ।।२।।

निर्विकार निराबाध सर्व संग विवर्जितम् ।
परमानन्द सम्पन्न शुद्ध चैतन्य लक्षणम् ।।३।।

उत्तमास्वात्मचितास्यात्मोहचिता च मध्यमा ।
अधमा काम चिन्तास्यात् परचिन्ता धमाधमा ।।४।।

निर्विकल्प समुत्पन्न ज्ञानमेव सुधारसम् ।
विवेक मजंलि कृत्वात पिवन्ति तपस्विन ।।५।।

सदानन्द मय जीव यो जानाति स पण्डित ।
स सेवते निजात्मान परमानन्द कारणम् ।।६।।

नलिनाच्च यथा नीर भिन्न तिष्ठति सर्वदा ।
सोऽयमात्मा स्वभावेन देहे तिष्ठति निर्मल ।।७।।

द्रव्य कर्म मलैर्मुक्त भाव कर्म विवर्जितम् ।
नो कर्म रहित सिद्ध निश्चयेन चिदात्मकम् ।।८।।

आनन्द ब्रह्मणो रूप दिज देहे व्यवस्थितम् ।
ध्यानहीना न पश्यन्ति जात्यन्धा इव भास्करम् ॥९॥

सद ध्यान क्रियते भव्यो मनो येन विलीयते ।
तत्क्षण दृश्यते शुद्ध चिच्चमत्कार लक्षणम् ॥१०॥

ये ध्यान लीना मुनय प्रधाना ते दु ख हीना नियमाद्भवन्ति ।
सम्प्राप्य शीघ्र परमात्मतत्व, व्रजन्ति मोक्ष क्षणमेकमेव ॥११॥

आनन्द रूप परमात्मतत्व, समन्त सकल्प विकल्प मुक्तम् ।
स्वभाव लीना निवसन्ति नित्य जानाति योगी स्वयमेव तत्व ॥१२॥

निजानन्दमय शुद्ध निराकार निरामयम ।
अनन्त सुख सम्पन्न सव सङ्ग विवर्जित ॥१३॥

लोकमात्र प्रमाणीय निश्चये नहि सशय ।
व्यवहारे तनुमात्र कथित परमेश्वरे ॥१४॥

यत्क्षण दृश्यते शुद्ध तत्क्षण गय विभ्रम ।
स्वस्थ चित स्थिरी भूत्वा निर्विकल्प समाधित ॥१५॥

स एव परम ब्रह्म स एव जिन पुङ्गव ।
स एव परम तत्व स एव परमो गुरु ॥१६॥

एव परम ज्योति स एव परम तप ।
स एव परम ध्वान स एव परमात्मक ॥१७॥

स एव सर्व कल्याण स एव सुख भाजनम् ।
स एव शुद्ध चिद्रूप स एव परम शिव ॥१८॥

स एव परमानन्द स एव सुखदायक ।
स एत परम ज्ञान स एव गुणसागर ॥१९॥

परमाह्लाद सम्पन्नं राग द्वेष विवर्जितम् ।
मोहं न देह मध्येण यो जानाति स पण्डित ॥२०॥

आकार रहित शुद्ध स्वस्वरूप व्यवस्थितम् ।
सिद्धमष्टगुणोपेतं निर्विकारं निरंजनम् ॥२१॥

तत्सदृश निजात्मानं योजनाति स पण्डित ।
सहजानन्द चैतन्य प्रकाशाय महीयसे ॥२२॥

पाषाणेषु यथा हेम दुग्ध मध्ये तथा घृतम् ।
तिल मध्ये यथा तैल देह मध्ये तथा शिव ॥२३॥

काष्ठ मध्ये यथा वह्नि शक्तिरूपेण तिष्ठति ।
अयमात्मा शरीरेषु यो जानाति स पण्डित ॥२४॥

सर्व श्रेष्ठ मोक्ष पद प्राप्ति में सहायक महामन्त्र पंच परमेष्ठी गर्भित णमोकार मन्त्र की महिमा

पद ५

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाण, णमो आइरियाण,
णमो उवज्झायाण, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥१॥
मंत्र संसारसार त्रिजगदनुपमं सर्व पापारि मन्त्र ।
संसारोच्छेद मन्त्र विषम विषहर कर्म निर्मूल मन्त्र ॥

अर्थ—संसार में सार भूत ये ही मन्त्र है, तीन लोक में इसकी कोई उपमा नहीं, सम्पूर्ण पाप रूपी शत्रुओं का विनाश करने वाला है, कर्म को जड़ से उखाड़ कर फेंक देने वाला है।

मन्त्रं सिद्धि प्रदानं शिवसुखं जननं केवल ज्ञान मन्त्र ।
मन्त्रं श्री जैन मन्त्रं जप जप जपितं जन्म निर्वाण मन्त्रं ॥

अर्थ—आत्मा के स्वरूप को प्राप्त करने वाला है, मोक्ष सुख को उत्पन्न करने वाला है केवल ज्ञान को उत्पन्न करने वाला है, जन्म मरण को नाश करने वाला है। ऐसे इस जैन मन्त्र को अनेक बार जपो। स्वर्ग की सम्पत्ति को प्राप्त कराने वाला है।

आकृष्टि सुरसंपदाविदधतेमुक्ति-श्रियो वश्यता।
उच्चाट विपदां चतुर्गति भुवां विद्वेष मात्मैनसाम् ॥

अर्थ—स्वर्ग की सम्पत्ति को प्राप्त करने वाला है, मोक्ष रूपी लक्ष्मी को वशीभूत करने वाला है, चारो गतियो में उत्पन्न हुये दुःखो का नाश करने वाला है, आत्मा के पापो को नाश करने वाला है।

स्तम्भ दुर्गमन प्रति प्रयततो मोहस्य सम्मोहनं।
पापात्पंचनमस्क्रियाक्षरमयी साराधना देवता ॥

अर्थ—खोटी गती के रोकने के लिए स्वम्भा के समान है, मोह का विनाश करने वाला है। ऐसे अक्षरमयी नमोकार मन्त्र को, जोकि देवता स्वरूप है, वह हमारी रक्षा करे।

अनन्तानन्त संसार-सन्तति छेद कारणम्।
जिनराजपदाम्भोज-स्मरण शरणं मम ॥

अर्थ—अनन्तानन्त संसार की जो परम्परा है उनके नाश करने का कारण जिनराज के चरणकमल का स्मरण ही मेरे शरण है और हो, हे भगवन्—

अन्यथा शरण नास्ति त्वमेव शरण मम।
तस्मात्कारुण्यभावेन, रक्ष रक्षजिनेश्वर ॥

भजन

अगर किस्मत से ए जिनवर, तेरा दीदार हो जाता।
जमाने भर की नजरो से, मेरा उद्धार होजाता ॥ टेक॥

अदा पाई है कुछ ऐसी, जो आशिक विश्व है तेरा।
अदा को देख कर तेरी, चकित ससार हो जाता ॥

मैं भूला आप था खुद को, भरी थी वह खुदी मुझ मे।
जमाना हेय दिखता है, तेरा जब ध्यान हो जाता ॥

लगाकर ध्यान जब भगवान तेरा, मैं बैठ जाता हू।
मैं खुद ही मस्त हो जाता, तेरा जब ध्यान हो जाता ॥

भवर मे फँस रही किश्ती, खिवैया है नही कोई।
लगाते पार नैया को, तो, मैं भी पार हो जाता ॥

इस विनती को भगवान् के सन्मुख खडे होकर पढ़ने से अध्यात्मरस टपकने लग जाता है निश्चय सम्यक्त्व का कारणभूत है।

दौलतरामजी कृत दर्शनस्तुति

सकल ज्ञेयज्ञायक तदपि, निजानद रसलीन।
सो जिनेंद्र जयवंत नित, अरिरजरहसविहीन ॥

जय वीतराग विज्ञानपूर, जय मोहतिमिर को हरन सूर।
जय ज्ञान अनतानत धार, दृगसुख वीरजमडित अपार ॥

जय परम शात मुद्रा समेत, भविजन को नित अनुभूति हेत।
भवि भागनवचजोगेवशाय, तुम धुनि ह्वै सुनि विभ्रम नसाय ॥

[illegible]

मैं भ्रम्यो अपनपो विसरि आप, [illegible] ॥

निज को पर को करता पिछान, पर में अनिष्टता इष्ट ठान ॥

आकुलित भयो अज्ञान धारि, ज्यों मृग मृगतृष्णा जानि वारि ।
तनपरणति मे आपो चितार, कबहू न अनुभयो स्वपदसार ॥
तुमको बिन जाने जो कलेश, पाये सो तुम जानत जिनेश ।
पशुनारकनरसुरगतिमँझार, भव धर धर मर्यो अनंत बार ॥
अब काललब्धिबलतैं दयाल, तुम दर्शन पाय भयो खुशाल ।
मन शात भयो मिटि सकल द्वंद्व, चाख्यो स्वातमरस दुखनिकंद ॥
तातैं अब ऐसी करहु नाथ, बिछुरै न कभी तुव चरण साथ ।
तुम गुणगणको नहि छेव देव, जग तारन को तुव विरद एव ॥
आतम के अहित विषय कषाय, इनमे मेरी परिणति न जाय ।
मैं रहू आपमे आप लीन, सो करो होउ ज्यो निजाधीन ॥

दर्शनं जिनचन्द्रस्य, सद्धर्मामृतवर्षणम् ।
जन्मदाहविनाशाय, वर्धनं सुखवारिधे. ।।
जीवादितत्त्वप्रतिपादकाय, सम्यक्त्वमुख्याष्टगुणार्णवाय ।
प्रशांतरूपाय दिगम्बराय, देवाधिदेवाय नमो जिनाय ।।

चिदानन्दैकरूपाय जिनाय परमात्मने ।
परमात्मप्रकाशाय, नित्य सिद्धात्मने नमः ।।
अन्यथा शरणं नास्ति, त्वमेवशरणं मम ।
तस्मात्कारुण्यभावेन, रक्ष रक्ष जिनेश्वर ।।

नहि त्राता नहि त्राता, नहि त्राता जगत्त्रये ।
वीतरागात्परो देवो, न भूतो न भविष्यति ।।
जिनेभक्तिर्जिनेभक्तिर्जिनेभक्तिर्दिने दिने ।
सदा मेऽस्तु सदामेऽस्तु, सदा मेऽस्तु भवे भवे ।।

जिनधर्मविनिर्मुक्तो, मा भवच्चक्रवर्त्यपि ।
स्याच्चेटोऽपि दरिद्रोऽपि, जिनधर्मानुवासितः ।।
जन्म-जन्मकृतं पापं, जन्मकोटिमुपार्जितम् ।
जन्ममृत्युजरारोगं, हन्यते जिनदर्शनात् ।।

अद्याभवत्सफलता नयनद्वयस्य ।
देव त्वदीयचरणाम्बुजवीक्षणेन ।।
अद्य त्रिलोकतिलक प्रतिभासते मे ।
संसारवारिधिरयं चुलुकप्रमाणम् ।।

★

महावीराष्टक स्तोत्र

● शिखरिणी ●

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचितः।
समं भाति ध्रौव्यव्ययजनिलसंतोंतरहिताः॥
जगत्साक्षी मार्गप्रकटनपरो भानुरिव यो।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥१॥

शब्दार्थ—(यदीये चैतन्ये) जिनके ज्ञान मे (ध्रौव्य) नित्य (व्यय) नाश (जनि) उत्पाद (लसत) सहित (अतरहिता) अनत (चित् अचित भावा) जीव अजीवादिक पदार्थ (सम भाति) एक साथ प्रतिभासित होते है। (य जगत्साक्षी) जो समस्त ससार को देखने वाले हैं (मार्ग प्रकटन पर. भानु इव) मोक्ष का मार्ग बतलाने मे जो सूर्य के समान है (महावीर स्वामी मे नयन पथगामी भवतु) ऐसे महावीर स्वामी मेरी आँखो के सामने रहो—अर्थात मुझे दर्शन देवो ॥१॥

भावार्थ—जिनके ज्ञान में उत्पाद व्यय ध्रौव्य सहित अनत जीव अजीवादिक पदार्थ एक साथ दर्पण के समान झलकते हैं। जो समस्त ससार को देखने वाले है तथा मुक्ति का मार्ग बतलाने मे सूर्य के समान है, ऐसे महावीर स्वामी हमे दर्शन देवें।

अताम्रं यच्चक्षुः कमलयुगल स्पदरहित।
जनान्कोपापायं प्रकटयति वाभ्यतरमपि॥
स्फुटं मूर्तिर्यस्य प्रशमितमयी वातिविमला।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥२॥

शब्दार्थ—(अताम्र) लालिमा रहित (स्पन्दरहित) टिमकार रहित (यच्चक्षु कमल युगलम) जिनके दोनो नेत्र कमल (जनान्) मनुष्यो को (अभ्यन्तरम्) आपके हृदय के हृदय के (कोपापायाम्) क्रोध रहितपने को (प्रगटयति) प्रगट करते है (यस्य स्फुट मूर्ति) जिनकी स्वच्छ मूर्ति (प्रशमितमयी) शान्ततासहित (अति विमला) बहुत पवित्र सुशोभित होती है ॥२॥

भावार्थ—जिनके लालिमा रहित और टिमकार रहित दोनों नेत्र मनुष्यो को अतरग की क्षमा को प्रगट करते है और भगवान की स्वच्छ वीतराग विकार रहित मुद्रा उनकी बाह्य क्षमा को प्रगट करती है। ऐसे महावीर स्वामी हमारी आंखो के सामने रहो।

नमन्नाकेंद्राली मुकुटमणिभाजालजटिल।
लसत्पादांभोजद्वयमिह यदीयं तनुभृता॥
भवज्ज्वालाशांत्यै प्रभति जलं वा स्मृयमपि।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (न·) ॥३॥

शब्दार्थ—(इह) इस लोक मे (यदीयं) जिनके (लसत् पादाम्भोजद्वयम्) शोभायमान दोनो चरण कमल (नमत्) नमस्कार करते हुये (नार्केद्रालि) इन्द्रो के समूह के (मुकुट मणि भा-जाल जटिलम्) मुकुटो में लगी हुई मणियो के प्रकाश समूह से व्याप्त हैं (स्मृतम् अपि) जिनका स्मरण भी (तनु-भृताम्) संसारी जीवो के लिये (भवज्ज्वाला शान्त्यै) ससार रूपी आताप को शांत करने के लिए (प्रभवति) होता है ॥३॥

आपकी पूजा कर मोक्ष प्राप्त करे इसमे आश्चर्य है ? ऐसे महावीर स्वामी हमे प्रगट हो दर्शन दे।

फनत्स्वर्णाभासोऽप्यपगततनुर्ज्ञाननिवहो।
विचित्रात्माप्येको नृपतिवरसिद्धार्थतनय॥
अजन्मापि श्रीमान् विगतभवरागोद्भुतगति-
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (न:)

शब्दार्थ:—(हे नृपति वर सिद्धार्थ तनय) हे मह सिद्धार्थ के पुत्र (कनत्स्वर्णाभास अपि) आपका शरीर हुये सोने के समान होने पर भी (अपगततनु:) आप श रहित हो (विचित्रात्माऽपि) अनेक प्रकार होने पर भी (ए एक हो (अजन्मापि) जन्मरहित होने पर भी (श्रीमान्) ल सहित हो (विगतभवराग:) सासारिक पदार्थों मे राग र होने पर भी (अद्भुतगति) विलक्षण गति वाले हो। हे म वीर स्वामी आप हमारी आखो के सामने रहो।

भावार्थ:—हे महाराज सिद्धार्थ के पुत्र आपका शरीर तपा हुये सोने के समान है तो भी शरीर रहित और ज्ञान के पि हो आप अनेक प्रकार हैं तो भी एक हैं। जन्म रहित हैं तो भ श्रीमान् हैं। सासारिक पदार्थों मे रागरूप गति के अभाव होने पर भी आप विलक्षण गति वाले है। ऐसे महावीर स्वामी हमे स्पष्ट दर्शन दें।

यदीया वाग्गंगा विविधनय कल्लोलविमला।
बृहज्ज्ञानांभोभिर्जगति जनता या स्पनयति॥
इदानीमप्येषा बुधजनमरालैः परिचिता।
महावीर स्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥६॥

निरभिमानरूप महा [illegible] राज्य [illegible] जिन्होंने यौवन काल मे ही त्याग किया है, ऐसे महावीर स्वामी हम दर्शन देवें।

महामोहातकप्रशमनपराकस्मिकभिषक् ।
निरापेक्षो बधुर्विदितमहिमा मगलकर ॥
शरण्य: साधूना भवभयभृतामुत्तमगुणो ।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (न) ॥८॥

शब्दार्थ—(महामोहातक) जो महान् मोह रूपी रोग को (प्रशमनपर) शात करने वाले (आकस्मिक) अकस्मात् मिल जाने वाले (भिषक्) वैद्य है तथा जो (निरापेक्ष बधु) स्वार्थ रहित भाई (विदित महिमा) प्रसिद्ध है महिमा जिन्हों की (मगलकर) और मगल करने वाले हैं (भवभयभृताम्) ससार से भयभीत (साधूनाम) सज्जन पुरुषो को (शरण्य) जो आश्रय दाता है। (उत्तमगुणो) जो उत्तम गुणवाले हैं ॥८॥

भावार्थ—महा मोह रूपी रोग को दूर करने के लिए जो आकस्मिक वैद्य है, जो ससार के नि स्वार्थी बधु हैं, जिनकी महिमा प्रसिद्ध है, जो जगत की भलाई करने वाले है, जो शसार से भयभीत मुनियो के लिये आश्रयदाता हैं जो अनेक गुणो के स्वामी हैं ऐसे महावीर स्वामी हमे दर्शन दें।

महावीराष्टक स्तोत्रं भक्त्या भागेंदुना कृत ।
य: पठेच्छृणुयाच्चापि स याति परमा गति ॥९॥

शब्दार्थ—(भक्त्या) भक्ति पूर्वक (भागेंदुना) मुझ भागचन्द्र के द्वारा (कृतम) बनाये गये (महावीराष्टक स्तोत्रम्) इस

नम चक्रवरति निधिभोग कामदेव द्वादशम मनोग।
शान्तिकरन सोलम जिनराय, शान्तिनाथ वंदौ हरखाय॥
बहुथुति करे हरख नहिं होय, निंदे दोष गहै नहिं कोय।
शीलवान परब्रह्म स्वरूप, वंदौ कुन्थुनाथ शिवभूप॥
द्वादशगण पूजें सुखदाय, थुति वंदना करैं अधिकाय।
जाकी निजथुति कबहु न होय, वंदौ अरजिनवर-पद दोय॥
परभव रतनत्रय-अनुराग, इह भव ब्याह समय वैराग।
बालब्रह्म पूरन व्रतधार, वंदौ मल्लिनाथ जिनसार।
बिन उपदेश स्वयं वैराग, थुति लौकांत करैं पगलाग।
नम सिद्ध कहि सब व्रत लेहिं, वंदौ मुनिसुव्रत व्रत देहिं॥
श्रावक विद्यावंत निहार, भगतिभाव सो दियो अहार।
बरसी रतनराशि ततकाल, वंदौ नमिप्रभु दीनदयाल॥
सब जीवन की बंदी छोर रागद्वेष द्वै बंधन तोर।
रजमति तजि शिवतियसों मिले, नेमिनाथ वंदौ सुखनिले॥
दैत्य कियो उपसर्ग अपार, ध्यान देखि आयो फनिधार।
गयो कमठ शठ मुख कर श्याम, नमो मेरुसम पारस स्वाम।
भवसागरतें जीव अपार, धरमपोत में धरे निहार।
डूबत काढे दया विचार, वर्द्धमान वंदौं बहुवार॥

दोहा—चौवीसौं पदकमल जुग, वंदो मनवचकाय।
'द्यानत' पढै सुनै सदा, सो प्रभु क्यों न सहाय॥

☆

न वन आम्र वृक्षो मे, नदियो का जहा सगम हुआ हो धार पर,
ल के मध्य द्वीप हो, उज्जवल वृक्ष के खोखला मे जहा जीव
न्तु न हो, पुराने वन मे, मशान मे, पर्वत की गुफा के भीतर
पद्मकूट तथा कृतिम अकृतिम चैत्यालयो मे महा ऋद्धिधारी
मुनियो के आश्रम मे जहा शका कोलाहल शब्द न हो, मन्द
सुगन्ध हवा चलती हो. स्त्री पुरुष नपुसक का आवागमन नही
शून्य घर खडहर, सून्य ग्राम हो पृथ्वी के नीचे का भाग या
उससे ऊपर का भाग केलो की कुजलता हो, नगर के उपवन मे,
भगवान की वेदी के पीछे एकान्त स्थान मे, वर्षा आताप शीत
प्रचड पवन डाँस मच्छर की बाधा न हो जीव जन्तु रहित
सुन्दर रमणीक स्थान देखकर तिष्ठं ध्यान करे ।

ध्यान करने के शरीर मे स्थान—मस्तक, ललाट माथा, दोनो कान दोनो नेत्र, नाक का नाक पर दोनो भौह के बीच की लता मे, मुख मे, तालुआ मे, हृदय मे, नाभि मे इसका विस्तार श्री ज्ञानार्णवजी ग्रन्थ श्री शुभचन्द्र आचार्य कृत मे बहुत विस्तार पूर्वक कथन है। ध्यान का ही ग्रन्थ है आजकल तो पुण्य के उदय से साधू समागम है। दिगम्बर साधुओ के पास कुछ दिन रह कर आत्म सिद्धिकरना चाहिए। इस ससार से थोडी थोडी निवृति निकालो।

ध्यान करने के योगाभ्यास मे ८४ आसनो का वर्णन किया है। जिसमे मुख्यतया वीरासन, वज्रासन, भद्रासन, दण्डासन, उत्कटिकासन, गोदूहन आसन, खड्गासन पद्मासन, अर्ध पद्मासन, सुखासन, [illegible] आसन [illegible] ।दि श्री गुरू के निकट रह कर उनके चर[illegible] ले मुमुक्ष योगी को

उनकी परम भक्ति वैयावृत्य करने पर उनके आशीर्वाद से य
मोही जीव आत्मा ससार समुद्र को तिरता है इसलिए जह
जहा श्री आचार्य गुरुदेव नग्न दिगम्बर विराजमान हो उन
सत्समागम करो। 'ऋते ज्ञानान मुक्ति" बिना ज्ञान अ
ध्यान के मुक्ति नही प्राप्त होती है।

दोहा—चाह दाह दाहे त्यागे, न ताह चाह।
समता सुधा न गाहे जिन निकट जो बतायो॥

ध्यान करने की भावना—इस प्रकार भानी और क
चाहिये।

कवित्त

कब ग्रहवास सो उदास होइ बन जाऊँ, वेऊ निज रूप
रोकू मन करी की (हथिनी)। रहिहों अडोल एक आसन अ
अग, सहिओं परीषह शीत घाम मेघ झरीकी। सारङ्ग (हि
समाज खाज कबधों खजेहे ग्रान ध्यान दल जोर जीत
मोह अरिकी। एकल विहारी जथा जात लिगधारी कब
इच्छाचारी बलिहारी वा घडी की।

अर्थ—हे भगवान ऐसा शुभ अवसर मुझको कब !
[illegible] जो मैं सर्व सग परिग्रह त्याग करके ससारी झझट
[illegible] हो कर नग्न दिगम्बर मुनि व्रत धारण करके व
[illegible] और [illegible] । और वहा पर ध्यान के द्वारा [illegible]
[illegible] पद्मासन तथा प्रव[illegible]
[illegible] हस्ती के समान
[illegible] परिग्रहो को [illegible] हुआ
[illegible]

४—बिन्दु-कमल

मेरे नाभि-कमल में जो खिले हुए पत्ते हैं उनमें हर एक पत्ते पर पीत रंग के बिन्दु हैं, जो हर एक पत्ते पर बारह बारह हैं। बीच के भाग में भी १२ हैं, और बीच में ही अक्षर हैं। यही मूल मैं हूँ। मैं बिन्दु के ऊपर दृष्टि रख कर जप करता हूँ। मेरा मंत्र है-स्वाहा ॐ।

६—कर्मरूपी कमल।

मेरी आत्मा के संग आठ कर्म अनन्तकाल से लगे हैं। ये ही मेरे ज्ञान को ढाकते हैं। मैं उनको कमल के रूप में एकत्र कर हृदय-स्थान में स्थापन कर भावनारूपी ध्यान की अग्नि में उन्हें जलाना चाहता हूँ।

ठ दरख्त का खडा है सो गायकर अपनी रगड-रगड कर
से पीठ खुजाय जावें और मेरा ध्यान बिल्कुल चलायमान
ो बस फिर तो मोह रूपी सैना को क्षण मात्र मे जीत लूं
। अवस्था एकल विहारी स्वच्छन्दता कब प्राप्त हो, श्री
कहते है ।

भावना करने वाला भव ससार से तिरता है और ध्यान
ने वाला एक दिन ध्याता हो जाता है मोक्ष की प्राप्ति
भ्यास, वैराग्य, और ध्यान से ही है—कहने का तात्पर्य
ह नही है सब घर छोड कर बाबा जी ही हो जाओ लेकिन
। समय मिले उसको अनमोल समझ कर अपने ससार से
र होने का भी लक्ष्य रखना चाहिए बिना कारन मिलाये
ार्य की सिद्धि नही होती भेद विज्ञान के माने यही हैं प्रति
मय आत्मा मे ये ही चितवन रहे 'तुपभाख भिन्न" अर्थात्
व सो स्व पर सो पर जैसे धान का छिलका धान से जुदा
' वैसे ही यद्यपि जीव और शरीर एकमेक है परन्तु लक्षण
ोनो का जुदा-जुदा है जब शरीर ही जुदा है तो इससे
म्बन्ध रखने वाली (जल मे भिन्न कमल है) । ससार की
विभूतिया व कुटुम्ब परिवार इत्यादि मेरे कैसे हो सकते
हैं 'विदूपा कि कर्तव्य शीघ्र ससार सन्तति छेदम् ।"

पृथ्वी धारणा

अब मौन द्वारा पद्मासन या अर्ध पद्मासन व खड्गासन
और भी ध्यान के अनेकों आसन हैं लेकिन ये सुगम पडते हैं
इनके द्वारा बैठ कर प्रथम चिन्तवन करे मेरा नाम तो जीव

हे जीव हूं चिरजीव चिरकाल चिरजीव हूं अखंडित, अमंडित, अरूपी, अलख, अदेही, अनेही, अजेई, अचल, परम ब्रह्मचारी, परम शांतमय, निरालोक, लोकेश, लोकांत तम, परम ज्योति, परमेश, परमात्मा परमसिद्ध प्रसिद्ध शुद्धात्मा, चिदानन्द, चैतन्य, चिद्रूप हूं निरंजन निराकार शिव भूप हूं इस प्रकार विचार करता हुआ विचारे कि यह मध्यलोक क्षीर समुद्र के समान निर्मल जल से परिपूर्ण है उसके मध्य में जम्बू द्वीप के समान गोलाकार एक लाख योजन का एक हजार पत्तों का धारण करने वाला तपाये हुये सुवर्ण के समान चमकता हुआ एक कमल है कमल के मध्य में (कर्णिका स्थान में) पीतवर्ण (स्वर्णाकार) एक सुमेरु पर्वत है उसके ऊपर पाण्डुक वन है उसके बीच में पाण्डुक शिला पर स्फटिक का एक सफेद सिंहासन है उसी सिंहासन पर मैं पद्मासन लगाकर बैठा हूं, और मेरे बैठने का उद्देश्य अपने पूर्व संचित कर्मों को जलाकर अपनी आत्मा को निर्मल करना है। इस प्रकार के चिन्तवन करने को पार्थिवी धारणा कहते हैं।

आग्नेयी धारणा का स्वरूप

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

रा कमल हृदय में अधो मुख किये बनावे जिसके पत्तों पर
कि आठ पाखुडियो का होगा ज्ञानावर्णी, दर्शनावाणी वेदनीय,
मोहनीय, आयु नाम, गोत्र, अन्तराय, यह हर पांखरी पर
लिखे और नीचे वाले १६ पाखडी के कमल के बीचो बीच
लिखे बीच मे डडी के ऊपर अब विचारे के हं के रकार
फ जो है ऊपर इसमें से अग्नि का शिखा ऊपर को बढते
बढते आठो कर्मों, को जला रही है पुन ऐसा विचार करे
अग्नि की ज्वाला बढ गई और सम्पूर्ण शरीर को जला रही
है शरीर भस्म रूप हो गया है रव अग्नि धीरे धीरे शाति
हो गई है इस प्रकार से चितवन करना अग्नेयी धारणा है
इसमे अभी और त्रिकोण र, र, र, इत्यादि बहुत किया है सो
यहा सक्षेप से वर्णन किया है।

वायु धारणा

फिर ध्यानी विचार करता है आकाश मे बडी जोर की
हवा चल रही है जो सुमेरु पर्वत को भी चलायमान कर रही
है वडे वडे मेघो को गर्जते हुये देखे अपने चारो तरफ एक
गोला मडप बना हुआ देखे घेरे मे आठ स्थानो पर "स्वाय"
"स्वाय वायु" बीज लिखा है बडी धूल वायु की भस्म को इस
गर्जते हुये बादलो ने उड़ा दिया और स्थिर रूप शान्ति मय
चितवन करे इसको वायु की धारणा कहते हैं।

अब वारुणी धारणा का स्वरूप

इसके अनन्तर ध्यानी पुरुष आकाश मे बडे बडे मेघो को
गरजते और बिजली चमकते मूसलाधार पानी बरस रहा है मे

है जीव हूं । [illegible] । निराकार निर्जीव हूं [illegible], [illegible]
अरूपी, [illegible] [illegible] अनेदी, अछेदी, [illegible], परम [illegible]
परम शान्तमय निरालोक, लोकेश, लोकाकार, परम ज्योति
परमेश, परमात्मा परमप्रिय अमित शुद्धात्मा, चिदानन्द
चैतन्य, चिद्रूप हूं निरंजन निराकार शिव रूप हूं इस प्रका
विचार करता हुआ विचारे कि यह मध्यलोक क्षीर समुद्र के
समान निर्मल जल से परिपूर्ण है उसके मध्य मे जम्बू द्वीप के
समान गोलाकार एक लाख योजन का एक हजार पत्तो का
धारण करने वाला तपाये हुये सुवर्ण के समान चमकता हुआ
एक कमल है कमल के मध्य मे (कर्णिका स्थान मे) पीतवर्ण
(स्वर्णाकार) एक सुमेरु पर्वत है उसके ऊपर पाडुक वन है
उसके बीच में पाडुक शिला पर स्फटिक का एक सफेद सिंहा-
सन है उसी सिंहासन पर मैं आसन लगाकर बैठा हूँ, और
मेरे बैठने का उद्देश्य अपने पूर्व सचित कर्मों को जलाकर
अपनी आत्मा को निर्मल शुद्ध बनालू इस प्रकार के चितवन
करने को पृथ्वी धरणा कहते है ।

अग्नेयी धारणा का स्वरूप

अब विचार करता है यानी कल्पना द्वारा अपने नाभि के
ऊपर भीतरी स्थान मे ऊपर ऊपर हृदय की ओर उठा हुआ
या फैला हुआ सोलह पत्र के सफेद कमल का चिन्तवन करे
पत्तो के चारो तरफ लाल लकीर हलकी शोभा युक्त देखे और
उसके ऊपर केसर के समान पीतवर्ण लिखे १६ स्वरो का
चिन्तवन करे । अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ
अं अः फिर इस ही कमल के मध्य कर्णिका के बीचो बीच

९—पूर्ण अग्नि

अन्दरकी अग्निने कर्मरूपी कमलको भस्म कर दिया
जो शरीररूपी पुद्गल है उसको बाहरकी अग्नि भस्म कर र
है। आत्मा ज्ञानभाव में ध्यान में लीन है।

१०--शरीररूपी खाख की ढेरी

कर्मरूपी कमलको और शरीररूपी पुद्गलको ज्ञानमई अग्निने भस्म कर दिया है। आत्मा शरीररूपी भस्ममे छिपी है ऐसा विचार करना चाहिए।
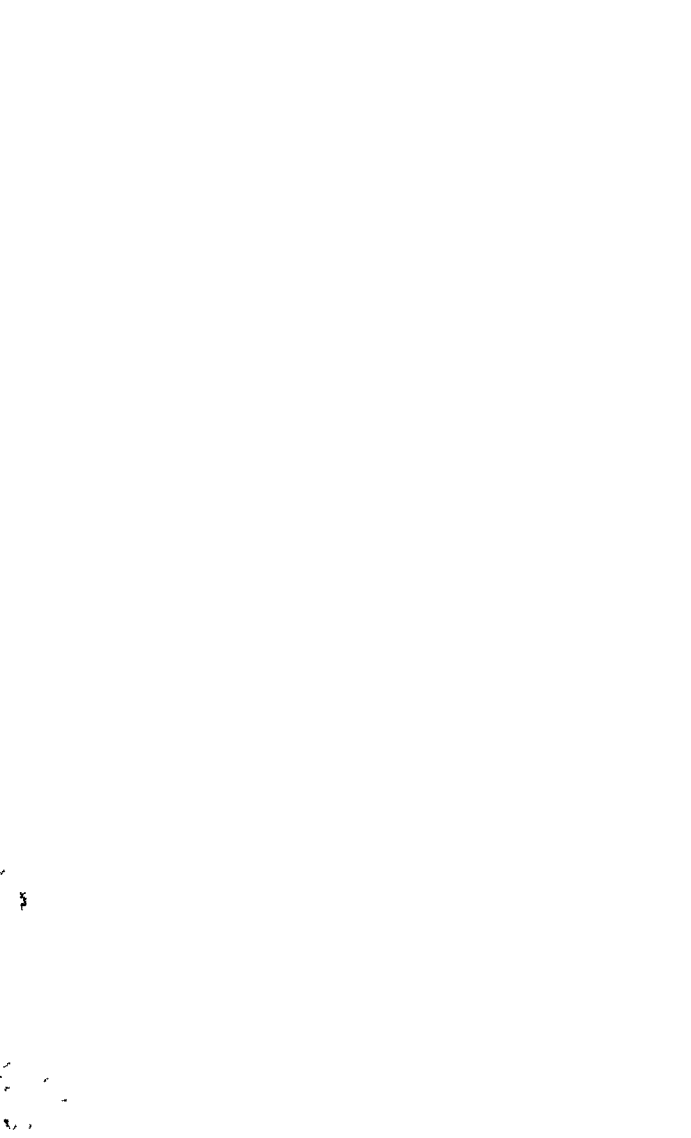
१३—शुद्ध भावना

ज्ञानी आत्मा विचारता है कि आत्मा के जो अनादि काल से आठ कर्म ज्ञानावरण, दर्शनावरण आदि लगे है, और उन्ही के कारण अनेक शरीर धारण कर भटक रहा था, ये सब जल कर भस्म हो गये है। और शुद्ध जल से धोकर आत्मा साफ हो गया है। अब मैं शुद्ध निर्विकार आत्मा स्फटिक के समान हूँ, मै उसी मे मग्न हूँ।

४. तृष्णा वाला जीव सदा भिखारी है दुःखी है।
५. मादक पदार्थ मन को कुमार्ग पर ले जाते हैं।
६. मोह ही ससार का प्रबल कारण है।
७. सुख तो सतोष ही में है, तृष्णा ससार का बीज है।
८. चचल चित्त सब विषय दु खो का मूल है।
९ जिसने आत्मा जाना है उसने सब कुछ जान लिया।
१० जहा सत्य है वही धर्म है फिर विजय ही विजय है।
११. शास्त्र अभ्यास के लिए नियमित काल होना चाहिए।
१२. भलाई बुराई तो सभी को आती है परन्तु श्रेष्ठ भलाई करना है बुराई तो अधमा अधम है।
१३. आलस्य में दरिद्रता का वास है और लाइलाज है।
१४. जो पुरुषार्थ करता है उसके कमला का वास है।
१५. परमात्मा आत्मप्रेम से नि सन्देह दीखता है।
१६. कष्ट हो लाखो मगर इसकी न कुछ परवाह कर।
१७. शुद्ध हृदय के भीतर प्रेम का ज्ञान होता है।
१८. मन की पवित्रिता सत्य भाषण से ही सिद्ध होती है।
१९. दया धर्म से बढ़कर दूसरी कोई नेकी नही है।
२०. तूफानी समुद्र को तिर कर वही पार सकता है जो उस धर्म मुनीश्वरों के चरणो की सेवा करते हैं।

प्राणायाम की विधि

शरीर की शुद्धि तथा मन को एकाग्र करने के लिये प्राणायाम का अभ्यास सहायक है यद्यपि वह ऐसा जरूरी नही है कि इसके बिना आत्मध्यान न हो सके इसलिए

उसी पवन को अपने कोठे से धीरे-धीरे बाहर निकाले सो रेचक है। अभ्यास करने वाले को पवन को भीतर लेकर थामने का फिर धीरे-धीरे बाहर तालुए के द्वारा ही निकालने का अभ्यास करना चाहिये जितनी अधिक देर तक थाम सकेगा वो ही मन को थिर अधिक देर तक कर सकेगा नाक से काम न लेकर तालु से ही खींचना व बाहर निकालना चाहिये सहारा नाक का जरूर लेना पड़ेगा।

खुली स्वच्छ हवा मे बहुत लाभदायक होता है जैसे नाभि के कमल मे पवन को रोका जावे वैसा हृदय कमल के वहा भी रोका जा सकता है।

प्राणायाम मे चार मण्डल पहचानने चाहिये। १ पृथ्वी मण्डल २ जल मण्डल ३ पवन मण्डल ४ अग्नि मण्डल।

१ पीले रंग का चौकोर पृथ्वी मण्डल है जो नाक के छेद को पवन से भर कर आठ अंगुल बाहर तक पवन मन्द मन्द निकलता रहे तब पृथ्वी मण्डल को पहचानना चाहिए यह [illegible]

२ [illegible] मण्डल है [illegible]

[illegible]

सरल उपाय

स्वास के द्वारा नाम जपें।

मन को रोककर परमात्मा मे लगादे जिसको सभी प्राणी कर सकते हैं आने जाने वाली प्रत्येक समय की स्वांस-उस्वास की गति पर ध्यान रखकर स्वास के द्वारा श्री भगवान का नाम का जाप्य देना यह अभ्यास उठते बैठते सोते चलते-फिरते खाते-पीते हर समय हर एक अवस्था मे किया जा सकता है इसमे स्वास जोर जोर से लेने की भी जरूरत नही है साधारण चाल के साथ नाम स्मर्ण किया जा सकता है। इस क्रिया मे समझना चाहिये भगवान प्रति समय मेरे पास ही हैं और उनके स्वरूप का ज्ञान गुणानुवाद का मान वध को छोडता है वाजीवखन तो यह क्रिया करने वाला बिलकुल संसार की सुध बुध ही भूल जाता है और उसका ध्यान उप-योग एकाग्रता तन्मयता हो जाता है जैसे कोई बात को फिर उससे पूछता है तो कहता है फिर से कहो मेरा ध्यान दूसरी तरफ था—यह साधन बड़ा ही उपकारी और सरल है।

ईश्वर शरणागति

ईश्वर प्राणिधान मे भी मनवश मे होता है अनन्य भक्ति से परमात्मा के शरण होना ईश्वर प्राणिधान कहलाता है ईश्वर शब्द से ही यहां पर परमात्मा और उनके भक्त दोनो ही समझे जा सकते हैं वे ईश्वर से निकटवर्ती भगवान के पुत्र के समान ही समझे जाते हैं कहा भी है। भेद विज्ञान जग्यो जिनके चित्त, शीतल चित्त भयो जिम चदन केलि करें

ABOUT THE AUTHOR

Dr M. K Jain, B Sc. D H.S, Hons.), Dip J, M A, LL B. Sahityaratna, Sahityalankar s a writer—editor of 20 years tanding in the field of science nd medicine, The Homœopathic Directory and Who's Who' published by M/s B. Jain Publishers, New Delhi, is a proof of his sincerity and devotion to the cause of Homœopathy He is the founder President of the Lord Mahaveer Charitable Homœopathic Hospital Trust (Regd) and the Homœopathic Chikitsa Parishad, Delhi In addition he daily devotes 4-6 hours for free treatment of the patients and has cured more than 150,000 patients so far He specializes in surgical diseases as well as diseases of cardiac and mental origin His recent achievement is the establishment of a 'Homœopathic Research Unit on Cancer, Leprosy and Mental Diseases' at Lord Mahaveer Homœopathic Hospital, Model Town, Delhi.